

---

प्रवचन नं. २५९, गाथा १८१-१८३ दिनाङ्क २१-०६-१९७९

गुरुवार, ज्येष्ठ कृष्ण १२

---

समयसार, संवर अधिकार । यहाँ ( तक ) आया है । क्रोधादिक आया । आत्मा है, वह त्रिकाली नित्य ध्रुव है, परंतु वर्तमान जाननक्रिया उस सन्मुख की हो, उसमें वह ज्ञात होता है; इसलिए जाननक्रिया, वह आधार है और आत्मा आधेय है । दोनों एक स्वरूप है । उपयोग में उपयोग । जाननक्रिया में आत्मा है । आत्मा राग में, शरीर में, वाणी में कहीं नहीं है । वह जाननक्रिया-जानने का उपयोग जो होता है, क्रिया होती है, उसके आधार से ज्ञात होता है, इसलिए वह जाननक्रिया में प्रतिष्ठित है । आहाहा !

अब, क्रोधादिक.. अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, जो विकारी भाव जो कि

क्रोधादिक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. वे विकारीभाव, विकारी परिणति में रहे हुए हैं। जाननक्रिया में आत्मा रहा हुआ है, वैसे विकारी परिणति की क्रिया में विकार रहा हुआ है। इसलिए व्यवहार... व्यवहार करे तो कहते हैं कि व्यवहार विकार है और विकार की परिणति में विकार रहा हुआ है; आत्मा में नहीं। आहाहा! ऐसा है।

क्रोधादि का अभिन्नपना होने से। किसे ? क्रोधादिक में ही हैं वे। क्रोधादि क्रिया का क्रोधादि से अभिन्नपना होने से। आहाहा! जैसे जाननक्रिया, आत्मा के साथ अभिन्न होने से वह जाननक्रिया, वह आधार प्रतिष्ठित; उसके आधार से आत्मा है, ज्ञात होता है। वैसे क्रोधादि क्रिया क्रोधादि से अभिन्न है; आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! व्यवहार रत्नत्रय का जो राग, कषाय, वह क्रोधादि से अभिन्न है, वह विकार से अभिन्न है; आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। आहा! ऐसा है।

अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है.. अर्थात् विकारभाव जो है, इसकी पर्याय में जो परिणमन है, उसमें वह रहा है। वह उसमें प्रतिष्ठित है, आत्मा में नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प-राग, वह उसकी पर्याय की क्रिया में रहा हुआ है, प्रतिष्ठित क्रिया (में रहा हुआ है), आत्मा में नहीं। आहाहा! क्रोधादिक्रिया का क्रोधादि से अभिन्नत्व होने के कारण, क्रोधादिक में ही है।

(ज्ञान का स्वरूप जाननक्रिया है,..) अधिक स्पष्ट किया। ज्ञान का स्वरूप अर्थात् आत्मा का स्वरूप जाननक्रिया है। जानना-देखना, आनन्द, शान्ति आदि क्रिया जाननक्रिया कही जाती है। आहाहा! आत्मा की पर्याय में जो जानन, श्रद्धा, शान्ति, आनन्द है, वह सब जाननक्रिया कही जाती है। वह जाननक्रिया, (ज्ञान का स्वरूप जाननक्रिया है,..) आत्मा का स्वरूप जाननक्रिया है। राग और क्रोधादि स्वरूप, वह उसका स्वरूप नहीं है। (इसलिए ज्ञान आधेय है और जाननक्रिया आधार है।) आत्मा उसमें रहा है। किसमें ? जाननक्रिया में। आहाहा! जाननक्रिया आधार है, आत्मा आधेय है, क्योंकि उससे (जाननक्रिया से) ज्ञात होता है, इसलिए।

तत्त्वार्थसूत्र में तो ऐसा पाठ है, 'द्रव्याश्रया..' द्रव्य के आश्रय से गुण हैं - ऐसा पाठ है। 'द्रव्याश्रया निर्गुण गुणाः' - ऐसा पाठ है। द्रव्य के आश्रय से गुण हैं। यहाँ तो पर्याय

का वर्णन है। वहाँ द्रव्य के आश्रय से गुण हैं और पर्याय भी वास्तव में तो द्रव्य के आश्रय से है, परन्तु यहाँ तो (यह) सिद्ध करना है कि जिसके द्वारा वह ज्ञात हो, उसके आधार से वह है। आहाहा!

जानन, श्रद्धा आदि परिणमन जो होता है, उसके परिणमन के आधार से यह (आत्मा) ज्ञात हुआ; इसलिए जाननक्रिया, वह आधार है; आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह आधेय है। दोनों एक ही जाति है। इसकी जाति में वह (जाननक्रिया) आधार में है। कजात जो राग है, उसमें यह आत्मा नहीं है। आहाहा! **(जाननक्रिया आधार होने से यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान ही आधार है।)** अर्थात् क्या? कि आत्मा जो ज्ञान है, उसकी क्रिया ज्ञान की ही है; इसलिए उस सब क्रिया के आधार से वह ज्ञान ही है, वह आत्मा ही है। जाननक्रिया और आत्मा, जाननक्रिया के आधार से आत्मा, दोनों एक ही है। दोनों एक जाति है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बहुत ही। जानने की क्रिया, श्रद्धा की क्रिया, उसे प्रतिष्ठित – उसके आधार से आत्मा है, क्योंकि दोनों एक ही जाति है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान ही स्वरूप है, वह आत्मा स्वरूप है। जाननक्रिया, वह आत्मा का ही स्वरूप है। आहाहा!

**(कारण कि जाननक्रिया और ज्ञान भिन्न नहीं है, इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान ज्ञान में ही है।)** आत्मा, आत्मा में ही है, ऐसा। आत्मा जाननक्रिया, ऐसी आत्मा, वह आत्मा, आत्मा में ही है। जानन, श्रद्धा आदि आत्मा, वह आत्मा, आत्मा में ही है। आत्मा राग में, विकल्प में नहीं है। समझ में आया? **(इसी प्रकार क्रोध, क्रोध में ही है।)**... विकार परिणाम है, वह विकार के आधार से, विकार की परिणति के आधार से विकार है। आहाहा!

ऐसा तो कहा न? 'द्रव्यश्रया निर्गुणा गुणाः'—यह तत्त्वार्थसूत्र में है और तत्त्वार्थसूत्र का एक शब्द ऐसा है कि धर्मास्ति, अधर्मास्ति है, वे उपकार करते हैं, ऐसा पाठ है और वहाँ 'इष्टापदेश' में कहते हैं, भाई! सब धर्मास्तिकायवत् है। उपकार का अर्थ है (निमित्त), इतनी बात। वहाँ उपकार का अर्थ 'उपकार करता है'—ऐसा ले लेवे, ऐसा नहीं है। पाठ ऐसा है। यहाँ पुस्तक नहीं।

**मुमुक्षु :** पाठ है, तदनुसार अर्थ करना चाहिए न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस उपकार का अर्थ ही यह है। यह उस लोक की छाप आती है न? फिर नीचे (लिखते हैं) 'परस्पोपग्रहो जीवानाम्' परस्पर उपग्रह (अर्थात्) उपकार करते हैं। उपकार का अर्थ (यह है कि) एक, दूसरी चीज़ है, इतना। उपकार करते हैं, इसका अर्थ उपकार (वास्तव में करते हैं - ऐसा नहीं)। यहाँ वह पुस्तक नहीं न? तत्त्वार्थसूत्र। 'सुख-दुःख, जीवित-मरण' लिया है। अर्थात् क्या? सुख-दुःख में उपकार करता है? दुःख उपकार करता है? मरण उपकार करता है? है, ऐसा बतलाता है। आहा! परन्तु क्या हो? उसमें तो उपग्रह है। 'परस्पोपग्रहो जीवानाम्' आता है न समाचार पत्र में जहाँ-तहाँ? लोक का (चित्र) बनाकर नीचे लिखते हैं—'परस्पोपग्रहो जीवानाम्' उपग्रहो अर्थात् उपकार करने में मानते हैं; और सर्वार्थसिद्धि वचनिका में स्पष्टीकरण किया है कि इस उपकार का अर्थ क्या? ऐसा नहीं, मात्र उस समय होता है, इसलिए उपकार कहा गया है। ऐसा अर्थ किया है। सर्वार्थसिद्धि वचनिका (में किया है)। परन्तु वह (चीज़) दूसरी चीज़ को स्पर्श नहीं करती। एक-दूसरे में अभाव है। आहा! कहीं उपग्रह है, दूसरे में होगा।

**मुमुक्षु :** पाँचवें अध्याय में है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाँचवें में है? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पाँचवें में है। उसमें होगा, यह आया, लो! हाँ, इसमें है। (सूत्र-१७) 'गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः'—ऐसा शब्द है, लो! उपग्रह का अर्थ उपकार करे। उपकार का अर्थ उपग्रह किया है। है, बस एक (वस्तु) समीप में है। 'गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः' लो, 'उपकार' शब्द है। जड़ का उपकार, उपकार? जड़ क्या उपकार करे? पाठ तो ऐसा है। धर्मास्ति-अधर्मास्ति जड़ उपकार करे। अर्थात् क्या?

**मुमुक्षु :** धर्मास्तिकाय उपकार तो करता है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं करता। आहाहा! वहाँ इष्टोपदेश में तो यह अर्थ किया है कि निमित्त है, वह कैसा? धर्मास्तिकायवत् उदासीन निमित्त है। उदासीन निमित्त को यहाँ उपकार कहा। क्या हो परन्तु अब?

**मुमुक्षु :** आचार्यों ने उपकार किया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह संक्षिप्त भाषा में उपकार का अर्थ उपग्रह किया है। उपग्रह का अर्थ उपकार किया है और वे आचार्य स्वयं कहते हैं कि निमित्त और दोनों को कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात रखकर यह बात करनी चाहिए या नहीं? कि एक द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय (का) अत्यन्त अभाव है। एक द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय का अत्यन्त अभाव है। अब वह अत्यन्त अभाव कब सिद्ध होता है? एक दूसरे उपकार करें, (तब सिद्ध होता है?) दूसरी बात। (समयसार) गाथा ३—प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-धर्म को स्पर्श करता है, परन्तु दूसरे को स्पर्श नहीं करता। स्पर्श नहीं करता तो उपकार कहाँ (करे)? इसका अर्थ एक-दूसरे से मिलान खाना चाहिए न? मिलान बिना करे वह कुछ काम आवे? आहाहा!

**मुमुक्षु :** सर्वार्थसिद्धि में यह अर्थ किया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्वत्र अर्थ किया है। सर्वार्थसिद्धि कहा न! सर्वार्थसिद्धि वचनिका में अर्थ किया है। उपकार का अर्थ किया है। एक दूसरी चीज होती है, उसे उपकाररूप से कहा जाता है। समीप में होती है, उपकारी-समीप, बस ऐसा। उचित निमित्त उसमें भी आ गया न? आहाहा! विवाद... एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ करे। बड़ा विवाद! स्पर्श नहीं करे, उसे करे क्या? आहाहा!

यहाँ कहते हैं और क्रोधादिक में,... अर्थात् विकारी भाव में। अब कर्म मिलाये। पहले यह लेकर, सूक्ष्म भाव, विकारी भाव, उसकी क्रिया और उसका परिणामन अत्यन्त भिन्न ज्ञान हुआ। यह सिद्ध करके और अब जड़ परवस्तु (लेते हैं)। क्रोध अर्थात् पुण्य-पाप की क्रिया में। **कर्म में...** यहाँ तो क्रोधादि शब्द में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (का भाव) उसमें आत्मा नहीं है। उस विकारी परिणति के आधार से विकार है, आत्मा के आधार से नहीं। उसके आधार से आत्मा नहीं। इतना सूक्ष्म है। कहो, गुलाबचन्दजी! अलग है, दिगम्बर आचार्यों की ऐसी बात है। गजब बात है! धीरे से, शान्ति से (समझना)। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता। अब चुम्बन नहीं करता, वह उपकार करे?

**मुमुक्षु :** उपकार तो करे न, यहाँ से सौ रुपये भेजना हो तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन रुपये भेजे ? रुपये, रुपये के कारण जाते हैं। आहाहा! थैली में जाये, इसलिए थैली से जाते हैं, रेल से जाते हैं, ऐसा भी नहीं है। वे अपनी उस समय की क्रियावतीशक्ति है, उसका परिणमन होकर ऐसे जाते हैं। आहाहा! कठिन बात।

यहाँ पहले यह लिया कि जाननक्रिया अर्थात् शुद्ध उपयोग। जाननक्रिया लिया, क्योंकि वह (शुद्ध) उपयोग सदा नहीं होता। पाठ में भले उपयोग है, परन्तु जानने की क्रिया, परिणमन, श्रद्धा करने की, उसके आधार से आत्मा ज्ञात होता है। इसलिए उसे प्रतिष्ठित-आत्मा का आधार उसे लिया है। यह बात की और फिर यह बात ली कि विकारी परिणाम, वह विकार के आधार से है। विकार के आधार से है, यह बात ली। पहले कर्म और नोकर्म नहीं लिये क्योंकि सूक्ष्मरूप से सिद्ध करके (यह लिया)। आहाहा! ऐसी बात है भाई!

**मुमुक्षु :** पहले तो आप ऐसा कहते थे कि विकार, वह पुद्गलजनित है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पुद्गलजनित किस अपेक्षा से? वह निश्चय से तो पुद्गल ही है। आत्मा का स्वभाव नहीं, परिणति का स्वभाव उसका नहीं। उसकी परिणति द्रव्य के अनुसार परिणति होती है। वह वास्तव में पुद्गलजन्य है परन्तु जब इसकी पर्याय सिद्ध करनी हो, तब पर्याय अपने में, पर्याय पर्याय के आधार से है, विकार, विकार के आधार से है, ऐसा (कहते हैं)। उसमें से ले तो विकार पुद्गल के आधार से है, ऐसा होता है। पुद्गल से विकार होता है, आत्मा से नहीं। आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण (हैं, उनमें) एक भी गुण विकार करे, ऐसा तीन काल में (कोई) गुण नहीं है। ऐसा जो द्रव्य, आनन्द का दल, अनन्त गुण की पवित्रता का महासागर, उसमें कोई गुण ऐसा नहीं कि विकृति (करे)। पर्याय में विकार होता है, इससे अशुद्ध उपादान से उसमें है और यह अशुद्ध उपादान है, वह व्यवहार है और व्यवहार है, वह निमित्त के आधीन हुआ है, इसलिए वह आत्मा का नहीं है, वह पर का है। आहाहा! ऐसा है। बनियों को भी धन्धे के कारण इतनी सब निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! ऐसी बात है, ऐसा निर्णय करना चाहिए न, बापू! ऐसी वस्तु जिस प्रकार है, उस प्रकार (निर्णय करना चाहिए)। आहाहा!

यहाँ तो मुझे दूसरा क्या कहना था? आत्मा जाननक्रिया के आधार से है और क्रोधादि, क्रोधादि क्रिया के आधार से (रहे हुए हैं)। विकारी भाव, विकारी पर्याय के

आधार से है। आहाहा! पहले यह बात सिद्ध की। आत्मा के आधार से वह नहीं और उसके आधार से आत्मा नहीं। आहाहा! है या नहीं? भाई! इस बार उल्लासचन्द्रजी ने समय निकाला। निवृत्ति मिली। अच्छा किया। यह तो बापू! समझने योग्य बात है, भाई! अभी तो कठिनाई पड़ गयी है। आहाहा! यह तो परम सत्य का प्रवाह है। परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर का कथन इस शैली का है।

आहाहा! यह कहकर अब कहते हैं, और विकार में यह पहले सिद्ध किया। अब साथ में दूसरा मिला देते हैं। विकार में **कर्म में या नोकर्म में..** वह जड़कर्म। पहले भावकर्म लिया। भावकर्म के साथ इसे सम्बन्ध नहीं है। फिर इसके साथ मिलाने को लिया, द्रव्यकर्म। फिर नोकर्म-बाहर के निमित्त (लिये)। वे **ज्ञान नहीं है..** ये तीनों ज्ञान नहीं है, इन तीनों में आत्मा नहीं है। जैसे विकार में आत्मा नहीं, कर्म में आत्मा नहीं, नोकर्म में आत्मा नहीं। आहाहा! मीठालालजी! ऐसा है। कहाँ गया, तुम्हारा लड़का गया? कहो, समझ में आया? आहाहा!

कर्म में आत्मा नहीं और नोकर्म, नोकर्म में। इस प्रकार एक नोकर्म तो आहार, शरीर वर्गणा आदि ली है न? उसे नोकर्म लिया और एक नोकर्म अर्थात् दूसरी सब चीजें। भावकर्म, द्रव्यकर्म के अतिरिक्त सब चीजें, उन्हें नोकर्म कहा जाता है। स्त्री, पुत्र, परिवार सब नोकर्म हैं। उनमें यह आत्मा नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आत्मा नहीं है परन्तु उसके साथ सम्बन्ध है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी सम्बन्ध नहीं है। कल्पना मानी है। परद्रव्य के साथ क्या? आहाहा! जहाँ स्वचतुष्टय से है और परचतुष्टय से नहीं, ऐसी सप्तभंगी पहला और दूसरा बोल। आहाहा! भाई! यह तो शान्ति से, आग्रह छोड़कर समझने जैसी बात है। बहुत सूक्ष्म है। इसलिए प्रभु ने कहा न कि वाद-विवाद करना नहीं, क्योंकि शास्त्र में इतने अधिक कई प्रकार के शब्द होते हैं, उन्हें वे सामने रखते हैं। वह उपग्रह का रखा, लो! धर्मास्ति, अधर्मास्ति उपग्रह करते हैं। अब यहाँ इष्टोपदेश में तो ऐसा (कहा कि) धर्मास्ति, अधर्मास्तिकायवत् सब उदासीन निमित्त हैं। आहाहा! यह तो स्वयं गति करे, तब उसे निमित्त कहा जाता है, इतना। दूसरी चीज़ जानने के लिये है। इसके लिये तो स्पष्टीकरण किया है कि यदि वह गति करावे तो सदा गति ही हुआ करे। अधर्मास्तिकाय की स्थिति

का निमित्तपना भी न रह सके। इसलिए गति करे, उसे वह निमित्त कहलाता है, स्थिति करे, उसका वह (अधर्मास्तिकाय) निमित्त कहलाता है। ऐसा करके ऐसा स्वतन्त्र सिद्ध किया है। आहा!

दो द्रव्य हैं और उन दो द्रव्यों की जो क्रिया एकसाथ में वह करायी जाती हो तो एक यहाँ गति करावे और एक स्थिति करावे? ऐसा तो है नहीं। आहाहा! जो गति करती हो, उसे धर्मास्तिकाय निमित्त कहलाता है। वह तो गति करता हो, उसे कहा। उसे निमित्त कहलाता है। गति करते जीव या जड़ स्थिर हो जाये (तो) वह अधर्मास्तिकाय स्थिर करे? वह तो स्वयं स्थिर होता है, तब अधर्मास्तिकाय का निमित्त कहलाता है। ऐसी बात है। आहाहा! विकार में, भावकर्म में जैसे आत्मा नहीं... आहाहा! वैसे जड़कर्म में आत्मा नहीं तथा बाह्य के सब निमित्त हैं, उनमें आत्मा नहीं। आहाहा! और ज्ञान में.. आत्मा में क्रोधादिक.. भावक्रोध, जड़कर्म और नोकर्म नहीं है। आत्मा में वे नहीं और उनमें यह आत्मा नहीं, पारस्परिक है। आहाहा!

यह तो संवर का अधिकार है। एकदम सब रुक गया। भगवान आत्मा ने अपने सन्मुख देखा, वहाँ जो जाननक्रिया हुई, वहाँ आस्रव रुक गया। आहाहा! और जाननक्रिया में आत्मा ज्ञात हुआ। आहाहा! वहाँ क्रोधादि अर्थात् भाव आस्रव है, वह रुक गया और उसके कारण फिर द्रव्य-नये परमाणु आनेवाले थे, वे इसे आनेवाले थे ही नहीं, इससे नहीं आये, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अरे रे! बात बात में अन्तर लगे।

क्योंकि उनके परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से.. लो! भाषा देखो! धर्मास्ति, अधर्मास्ति उपकार तो एक ओर रह गया, परन्तु आत्मा में होनेवाले दया, दान के परिणाम, भक्ति आदि के परिणाम और आत्मा को परस्पर अत्यन्त विपरीतता है। है? समझ में आया? आहाहा! उनके परस्पर.. अर्थात् कि विकारी परिणाम को, जड़कर्म को और नोकर्म को परस्पर (अर्थात्) आत्मा में वे नहीं और उनमें आत्मा नहीं, ऐसे परस्पर अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। ओहोहो! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प / राग, शुद्ध चैतन्य भगवान से अत्यन्त स्वरूप विपरीत है। विपरीत, ऐसा नहीं लिया; अत्यन्त स्वरूप विपरीत है। आहाहा! है या नहीं इसमें? कोई कहे कि घर के अर्थ करते हैं। ऐसा कहते हैं। घर के सही, आत्मा के घर के। आहाहा!



अरे... भाई! तुझे क्या करना है? तुझे दूसरी चीज़ को सम्बन्ध में रखना है? रखना है (कहाँ)? वह तो अनादि से है। तो अनादि से सम्बन्ध में रखा तो संयोग नरक, निगोद के मिलेंगे। आहाहा! आत्मा के आनन्द और ज्ञान की परिणति के अतिरिक्त किसी भी चीज़ को यदि सम्बन्ध में रखनी हो तो वह सम्बन्ध में रखने से नरक और निगोद का सम्बन्ध होगा। आहाहा! गोविन्दरामजी! ऐसी बात है। यह समझकर क्या करना? दोपहर को प्रश्न किया था न? आहाहा!

उनके.. अर्थात् विकारभाव को और आत्मा को, कर्म और आत्मा को। देखा? और नोकर्म को तथा आत्मा को परस्पर.. परस्पर (अर्थात्) वह इसमें नहीं और यह उसमें नहीं। आहाहा! विकार परिणाम आत्मा में नहीं और आत्मा विकार परिणाम में नहीं। कर्म आत्मा में नहीं और आत्मा कर्म में नहीं। नोकर्म में आत्मा नहीं और आत्मा में नोकर्म नहीं। आहाहा! सभी चीज़ें आ गयीं। राग से लेकर सभी चीज़ें (आ गयीं)। आहाहा! परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से.. आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा और उनकी वाणी भी... आहाहा! वह नोकर्म में आती है न? उसे और आत्मा को स्वरूप विपरीतता है, कहते हैं। आहाहा! अरे, ऐसा है! अत्यन्त स्वरूप विपरीतता। परस्पर— इससे यह और इससे यह। एक दूसरे को परस्पर अत्यन्त स्वरूप-विपरीतता होने से.. आत्मा का स्वरूप और विकारी तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से। लो! विपरीत का अर्थ विरुद्ध है। आहाहा! अब भावकर्म का स्वरूप आत्मा के स्वरूप से अत्यन्त विपरीत और विरुद्ध है। वह भावकर्म जीव को लाभ करे? कहो, आहा! वह कान्तिलाल सर्वत्र यह लिखता है कि उन्होंने विशुद्धि कही है। इसलिए विशुद्धि शुद्ध का कारण कितने ही नहीं मानते? तुम्हारा कान्ति ईश्वर (ऐसा लिखता है)। आहाहा!

**मुमुक्षु :** एकान्त से ऐसा ही मानना चाहिए क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसे कुछ खबर नहीं। एकान्त ही मानता है, विशुद्धि से होता है। उन्होंने विशुद्धि शब्द प्रयोग किया है। भाई! यह तो यहाँ बहुत बार कहा गया है कि विशुद्धि शुभ को भी कहा जाता है और विशुद्धि शुद्ध को भी कहा जाता है। विशुद्धि शब्द आया, इसलिए शुद्ध का कारण है, ऐसा है ही नहीं।

यहाँ तो वह विशुद्धि जो कषाय की मन्दता और आत्मा को परस्पर अत्यन्त विरुद्ध

है। यहाँ तो यह कहा है। कहा या नहीं उसमें? आया या नहीं उसमें? विशुद्ध भाव। कषाय मन्द भाव क्रोधादि में आ गया। आहाहा! क्रोध विभावभाव है, (वह) अत्यन्त स्वरूप विपरीत है। व्यवहार का स्वरूप और निश्चय आत्मा का (स्वरूप) दोनों के बीच परस्पर अत्यन्त स्वरूप विरुद्ध है। आहाहा! कितने भेद हुए?

एक की दूसरी चीज़ नहीं, दूसरे के प्रदेश भिन्न, आहाहा! इसलिए एक सत्ता की उत्पत्ति नहीं। आहाहा! इसलिए आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं। आहाहा! इतने सब (भेद)! कितना स्पष्ट किया है। मध्यस्थ होकर (समझ) बापू! तुझे तेरा कल्याण करना हो (तो समझ)। दुनिया दुनिया की जाने। दुनिया-नवतत्त्व सदा रहनेवाले हैं। आस्रव-बंध रहनेवाले हैं। अनन्त काल अनन्त तीर्थकर हुए और अभी होंगे तो इस तत्त्व की श्रद्धा करनेवाले रहनेवाले हैं। आस्रव और बन्ध को धर्म माननेवाले, ऐसा तत्त्व माननेवाले रहनेवाले हैं। अनन्त तीर्थकर हुए, महाविदेह में हुए... आहाहा! और वहाँ भी तू अनन्त बार गया। आहाहा! यह स्वरूप सुनकर भी अन्दर विपरीतता गयी नहीं। उस विपरीतता में रहा था। विपरीतता में रहा तो उसका स्वभाव सम्बन्ध संयोग विपरीत मिले। आहाहा! संयोग में नरक और निगोद, तिर्यच और पशु (मिले)। आहाहा!

**मुमुक्षु :** कान्ति ईश्वर को तो शाबाशी देनी चाहिए, ऐसा कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो दे। बहुत सामने है। होवे उसके माननेवाले भी। सबके माननेवाले होते हैं न! बकरा काटे तो बकरों के लेनेवाले होते हैं या नहीं? ऐसा। विपरीत मान्यता (के) माननेवाले भी होते हैं या नहीं? आहाहा! अरे रे! क्या हुआ? भाई! बापू! तू अनादि-अनन्त, उसकी सम्हाल नहीं की और राग से मुझे लाभ होगा, उसमें सम्हाल करे, तो जिसे संयोग से लाभ होगा, ऐसा माना वह संयोग इसे नहीं छूटेगा। चार गति का संयोग भाव तेरा आना और उससे लाभ माना तो संयोगभाव नहीं छूटेगा। संयोगी चीज़ नहीं छूटेगी। आहाहा!

ज्ञान अर्थात् आत्मा का स्वरूप (और क्रोधादिक..) व्यवहार भावकर्म (तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से) उनके परमार्थभूत.. अब दूसरा अधिक आया। वहाँ था, पहले में आ गया था। परस्पर आधाराधेयसम्बन्ध भी है ही नहीं। पहले आ गया था, चौथी लाईन। यहाँ विशेष सिद्ध किया। उनके परमार्थभूत आधाराधेयसम्बन्ध

नहीं है। आहाहा! उसमें तो एक-दूसरे को आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है, इतना आया था। चौथी लाईन। एक-दूसरे को आधार-आधेय (सम्बन्ध नहीं है) अब यहाँ परमार्थ से (सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं)। परमार्थभूत.. आहाहा! राग को और आत्मा को परमार्थभूत आधार है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रय को और आत्मा को परमार्थभूत आधार-आधेय है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

परमार्थभूत आधाराधेयसम्बन्ध नहीं है। पहले यह आ गया था परन्तु यह एक-दूसरे को आधार-आधेय सम्बन्ध (नहीं है) इतना (था)। अब यहाँ (कहते हैं) परमार्थ से आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में एक-दूसरी चीज़ को आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं, ऐसा। वास्तव में राग को और भगवान आत्मा को वास्तव में आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है कि राग के आधार से आत्मा ज्ञात हो और आत्मा के आधार से राग हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। आहा!

और जैसे ज्ञान का स्वरूप.. अर्थात् आत्मा का स्वरूप। जाननक्रिया है.. जाननक्रिया है उसी प्रकार (ज्ञान का स्वरूप) क्रोधादिक्रिया भी हो,.. पारस्परिक लेते हैं। परस्पर था सही न? जैसे क्रोधादि का स्वरूप क्रोधादि क्रिया है, उसी प्रकार (क्रोधादिक का स्वरूप) जाननक्रिया भी हो, ऐसा किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता;.. आहाहा! कितना स्पष्ट किया है! दोनों अत्यन्त (भिन्न हैं)। रागादि पदार्थ, दूसरा पदार्थ भिन्न, परन्तु अन्दर राग (हो, वह) परपदार्थ है। भावकर्म। आहाहा! अशुद्धनय से इसकी पर्याय में है परन्तु शुद्धदृष्टि से देखें तो उसे और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। अशुद्धनय से राग-द्वेष आदि इसकी पर्याय में है और अशुद्धनय अर्थात् व्यवहार हुआ। वहाँ तो यह लिया, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से, ऐसा लिया है। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से... द्रव्यार्थिक क्यों (कहा)? क्योंकि इस द्रव्य की पर्याय है न, ऐसा। इसलिए शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से विकार इसका है, ऐसा कहा, परन्तु वह तो वस्तु की स्थिति बतलाने को (कहा है)। अब जब इन्हें संवर भेद बताना है। आहा! जो वास्तविक एक तत्त्व में नहीं और इस तत्त्व में वह तत्त्व नहीं, ऐसा भेदज्ञान बताना है, वहाँ तो राग में आत्मा अत्यन्त विरुद्ध (है, इसलिए आत्मा में) है ही नहीं। आहाहा! यह विरुद्ध है, वह आत्मा में है ही नहीं, ऐसा।

जैसे क्रोधादि का स्वरूप क्रोधादि क्रिया है, उसी प्रकार (क्रोधादिक का स्वरूप) जाननक्रिया भी हो.. आहाहा! राग में राग है और राग, जाननक्रिया भी कर सकता है, आत्मा की जानन, सम्यग्दर्शन भी कर सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! राग-राग को करे, वैसे राग, समकित को करे, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! ऐसा किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता;.. विकार को, कर्म को और नोकर्म को आत्मा के साथ और आत्मा उनके साथ, किसी भी प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता।

क्योंकि जाननक्रिया और क्रोधादिक्रिया भिन्न-भिन्न स्वभाव से प्रकाशित होती हैं.. यहाँ यह अधिक लिया, देखा? जाननक्रिया, वह स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान की क्रिया और राग की क्रिया भिन्न-भिन्न स्वभाव-दोनों के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। अब, इतना तो सिद्ध किया। आहाहा! दोनों के स्वभाव भिन्न हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम और आत्मा के परिणाम जो जानने के परिणाम, सम्यग्दर्शन के (परिणाम), इन दोनों का स्वरूप भिन्न हैं। आहाहा! इन दोनों के स्वभाव ही भिन्न हैं। दोनों के स्वभाव भिन्न स्वभाव से प्रकाशित हैं। आहाहा! राग, राग के स्वभाव से प्रकाशित है, भगवान आत्मा जाननक्रिया से प्रकाशित है। आहाहा! कहो। कहा न, जहाँ हो वहाँ सर्वत्र यही शब्द लेते हैं। क्षमा के सामने। कषायभाव है। सब जगह यह आता है। कर्ताकर्म में आता है। आहाहा! बहुत अच्छा लिखा है, हों! पहला अधिकार पूरा बहुत अच्छा अधिकार!

क्योंकि विकाररूप से आत्मा का जाननपना स्थापित नहीं किया जा सकता और आत्मा का जानपना विकार से होता है, ऐसा स्थापित नहीं किया जा सकता **क्योंकि जाननक्रिया..** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति और क्रोधादि की परिणति, राग की परिणति भिन्न भिन्न स्वभाव से प्रकाशित होती हैं.. दोनों का स्वभाव ही भिन्न-भिन्न है, ऐसा जानते हैं। आहाहा! अब इसमें व्यवहार के रत्नत्रय शास्त्र में आवे, व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है (ऐसा आवे), परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान करावे। इस बात को मिथ्या करके करे? (यदि ऐसा कहे तो) पूर्वापर विरोध हो गया। आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप, उस ज्ञान और आनन्दस्वरूप की परिणति तथा राग की परिणति दोनों का स्वरूप भिन्न स्वभाव है। दोनों का स्वभाव ही भिन्न प्रकाशित करता है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो कहीं आगे नोकर्म में रह गये, परन्तु अन्दर भावकर्म और

आत्मा का स्वभाव, दोनों भिन्न स्वभाव से प्रकाशित होते हैं। भगवान जानन-देखन से प्रकाशित होता है और राग है, वह विकार से प्रकाशित होता है। आहाहा! अत्यन्त स्वरूप विपरीत से प्रकाशित होते हैं। आहाहा! सामने है या नहीं? एक-एक लाईन में बहुत भरा है। ओहोहो!

और इस भाँति.. अभी एक नयी बात। स्वभावों के भिन्न होने से.. दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम और चैतन्य के जानने के परिणाम, दो प्रकार स्वभाव भिन्न है। आहाहा! यह वापस कारण दूसरा लेना है। इस भाँति स्वभावों के भिन्न होने से वस्तुएँ भिन्न ही हैं। वे वस्तुएँ भिन्न हैं। परन्तु अब वह वस्तुएँ भिन्न हैं, इसमें जरा कहना है। वस्तुएँ भिन्न ही हैं। इस प्रकार ज्ञान तथा अज्ञान में.. देखा? यह लेना है वापस। ये रागादि अज्ञान हैं, उनमें ज्ञान नहीं है, वापिस ऐसा कहना है। आहाहा!

आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। उस ज्ञानपरिणति से आत्मा ज्ञात होता है और राग है, वह अत्यन्त भिन्न स्वभाव है। क्योंकि कहा न? ज्ञान और अज्ञान, दोनों को आधार-आधेय है ही नहीं। राग अज्ञान है। यह दया, दान का विकल्प भी अज्ञान है अर्थात् इसमें ज्ञान का अंश नहीं है। अज्ञान है। आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव, वे अज्ञान हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसलिए वस्तुएँ भिन्न ही हैं। इस प्रकार ज्ञान तथा अज्ञान में (क्रोधादिक में) आधाराधेयत्व नहीं है। आहाहा! एक-दो यह गाथा पढ़े तो (समाधान हो जाये ऐसा है)। आहाहा! ऐसा कहा है, देखो न! भिन्न भिन्न स्वभाव से प्रकाशित होती हैं... दोनों के स्वभाव भिन्न प्रकाशित होते हैं। दोनों के स्वभाव भिन्न प्रकाशित होने से दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं। दोनों वस्तुएँ भिन्न होने से... आहाहा! ज्ञान और अज्ञान कहा। (स्पष्टता) करते-करते लाते हैं। राग के, दया, दान के, व्रत के परिणाम, वह अज्ञान है; उनमें ज्ञान नहीं है, वे तो राग हैं। आहाहा! और भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप और अज्ञान दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

इस प्रकार.. गजब बात की है! टीका.. ओहोहो! ज्ञान अर्थात् आत्मा को। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु है। उसकी परिणति ज्ञान और आनन्द की है। उस परिणति द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। इसलिए परिणति उसका आधार है। राग का आधार राग है। राग और इसे दोनों को—ज्ञान और अज्ञान को—दोनों को अन्तर है। आहाहा! स्वरूप का ज्ञान,

श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन और राग का परिणमन, वह अज्ञान है। ज्ञान और अज्ञान दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं। कहकर फिर (कहते हैं कि) ज्ञान और अज्ञान दोनों भिन्न हैं। **ज्ञान तथा अज्ञान में (क्रोधादिक में) आधाराधेयत्व नहीं है।** ऐसा। दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं, इसलिए राग को आत्मा का आधार जरा भी है, शुभराग आत्मा को सम्यग्दर्शन में सहायता करता है, ऐसा जरा भी नहीं है।

कान्तिलाल का यही कहना है, बस! शुभभाव है न? अधःकरण और अनिवृत्तिकरण (आता है न)? आहाहा! अरे रे! क्या हो? भाई! वापिस अभिमान छोड़ देना कठिन पड़े। आते थे, सुनने आते थे। सुनने तो आवे ही वह (परन्तु) अपनी बात रखकर। वे यहाँ सौभागभाई आते थे, वे अपनी बात रखकर सुनते थे, परन्तु अन्त में नरम पड़ गये। राजकोटवाले सौभागचन्द! सुनने आवे, परन्तु बराबर उसकी (स्वयं की) बात रखकर (सुने)। बहिन की पुस्तक पढ़ी और एकदम नरम पड़ गये और एकदम मेरे पास आये। महाराज! यह पुस्तक कोई एकाध व्यक्ति भी पढ़कर भव का अन्त लायेगा तो क्या? छह हजार पुस्तक लिये। रुपये, रुपये देते थे न? ऐसे तीन रुपये (कीमत है) परन्तु मुम्बईवाले दो (रुपये) देते थे। छह हजार पुस्तक सभा में बाँट दी। साढ़े तीन हजार विक्रय हुई। क्योंकि कितने ही लड़के हों, कितने ही अन्यमति हों, कितनों के पास तो है। इसलिए ऐसा कि न हो उसे दो। साढ़े तीन हजार बाँटे। कहो, यह नवीन बात हुई है। राजकोट २००० घर का प्रमुख व्यक्ति, साधु उसे पूछे, वह व्यक्ति मुम्बई में बहिन की पुस्तक में लिखा है कि यह दिगम्बर धर्म सत्य है। उसमें लिखा है न? वह पुस्तक सभा में बाँटी। स्थानकवासी छोड़कर। बापू! यह मार्ग दूसरा है, बापू! आहाहा! और फिर मेरे पास हर्ष करने आया। हर्ष करे, हों! आहाहा! यह पुस्तक कोई एकाध बहिन पढ़ेगी, एकाध आदमी पढ़कर भव का अन्त लायेगा तो भी लाभ होगा। ऐसा बोले, हों! आहाहा! लोगों को ऐसा साधारण लगे। छोटे मुँह बड़ी बातें कहते हैं यह। साधुपना नहीं, मोटर में बैठना, ऐसे में फिर बातें ऐसी करना। कहते हैं। आहाहा! बापू! वह बाहर की चीज़ भिन्न है, अन्तर की भिन्न है। क्षायिक समकिति तो चक्रवर्ती के राज में हों, दिखायी दे। छियानवेँ हजार स्त्रियाँ हों, आसक्ति का राग होता है। आहाहा! रुचि उड़ गयी है, सुखबुद्धि उड़ गयी है। किसी भी चीज़ में सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! धर्मी को आत्मा के सुख के अतिरिक्त सर्वत्र सुखबुद्धि

(उड़ गयी है)। तीर्थकरगोत्र (जिस) भाव (से) बँधे, उसमें भी सुखबुद्धि उड़ गयी है कि यह ठीक बँधा, यह ठीक फलेगा। आहा! ऐसा है। बहुत सरस बात की है, हों! पूरा पैराग्राफ अकेले तत्त्व से भरपूर है। संवर, संवर। आहाहा! अब दस मिनिट है।

इसी को विशेष समझाते हैं—जब एक ही आकाश को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. देखो! आधार-आधेय की व्याख्या। आधाराधेयभाव का विचार किया जाता है, तब आकाश को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से.. आकाश किसी दूसरे के आधार से है, यह है ही नहीं। आकाश जो सर्व व्यापक है, वह तो आकाश, आकाश के आधार से है। आहाहा! इस आधार का दृष्टान्त देते हैं। गजब गाथा।

एक ही आकाश को अपनी बुद्धि में स्थापित करके (आकाश के) आधाराधेयभाव का विचार किया जाता है, तब आकाश को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से (अर्थात् अन्य द्रव्यों में स्थापित करना अशक्य ही होने से) बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा प्रभवित (उद्भूत) नहीं होती;.. बुद्धि में, आकाश को दूसरा आधार हो, ऐसी बात प्रभवित नहीं होती। प्रभवित नहीं होती=लागू नहीं होती; लग सकती नहीं; शमन हो जाती है; उद्भूत नहीं होती। आकाश दूसरे द्रव्य के आधार से है, यह बात शमन हो जाती है। ऐसा है नहीं। आकाश को और आधार कौन? परवस्तु उसमें रहे, इसलिए व्यवहार अवगाहन कहलाये, परन्तु आकाश किसमें रहे? आहाहा! आधार भी वह और आधेय (भी) वह। आहाहा!

इस राग और आत्मा को आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है, यह सिद्ध करने के लिये यह बात ली है। बात तो वह सिद्ध करनी है, परन्तु वह न समझ में आये, उसे यह दृष्टान्त दिया कि भाई! तू, आकाश है, वह विचार। आकाश को आधार कौन? दूसरे किसी द्रव्य का आधार है? तेरी कल्पना वहाँ शमन हो जायेगी। आकाश का आधार आकाश है। आहाहा! वाह! और उसके प्रभवित नहीं होने से, 'एक आकाश ही एक आकाश में ही प्रतिष्ठित है'.. ठीक! आहा! आकाश है, वही आकाश को आधार है। यह भलीभाँति समझ लिया जाता है और इसलिए ऐसा समझ लेनेवाले के पर-आधाराधेयत्व भासित नहीं होता। आकाश को कोई दूसरा आधार है, उसमें आकाश रहा हुआ है, ऐसा भासित नहीं होता। आहा!

इस प्रकार जब एक ही ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. अब आत्मा पर उतारते हैं। आहाहा! ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा, आनन्दस्वभाव शुद्ध पवित्र स्वभाव परमात्मा को अपनी बुद्धि में स्थापित करके.. आहाहा! भेदज्ञान कराया। (ज्ञान का) आधाराधेयभाव का विचार किया जाये.. आत्मा का आधार-आधेयभाव विचार किया जाये, तब ज्ञान को शेष अन्य द्रव्यों में आरोपित करने का निरोध ही होने से.. यह आत्मा किसी दूसरे द्रव्य के आधार से नहीं है। आहा! आत्मा, राग के आधार से नहीं है; राग, आत्मा के आधार से नहीं है। आहाहा! है ?

बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा प्रभावित नहीं होती; और उसके प्रभावित नहीं होने से, 'एक ज्ञान ही एक ज्ञान में ही प्रतिष्ठित है'.. आत्मा, आत्मा की परिणति में, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। स्वयं वस्तु अपने आपके स्वरूप में प्रतिष्ठित है। आहाहा! यह भलीभाँति समझ लिया जाता है और ऐसा समझ लेनेवाले को पर-आधाराधेयत्व भासित नहीं होता.. पर का आधारपना और आत्मा आधेय, ऐसा भासित नहीं होता। जैसे आकाश को पर आधार और आकाश आधेय नहीं है, वैसे भगवान आत्मा को आधार रागादि और आत्मा आधेय, ऐसा भासित नहीं होता। उसका स्वरूप है, वह आधार और आत्मा वह आधेय। आहाहा! उसमें है ?

पर-आधाराधेयत्व भासित नहीं होता, इसलिए ज्ञान ही ज्ञान में ही है,.. आहाहा! आत्मा, आत्मा में ही है, अर्थात् आत्मा का स्वरूप जो परिणति करे, वह आत्मा में है, वह भी आत्मा है। रागादि, आत्मा नहीं; शरीर, नोकर्म वह आत्मा नहीं परन्तु आत्मा का जानना, देखना, श्रद्धान, स्थिरता, वह आत्मा है। उसका स्वरूप है, वह आत्मा है और उस स्वरूप के आधार से आत्मा रहा हुआ है, तो ज्ञान, ज्ञान में रहा है, आत्मा में आत्मा में रहा है। आहाहा!

ज्ञान ही ज्ञान में ही है, और क्रोधादिक ही क्रोधादिक में ही है। जैसे आकाश का आधार आकाश ही है, वैसे विकार का आधार आत्मा है, ऐसा नहीं। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि पुण्य और पाप, राग-द्वेषादि लक्षण है और आत्मा लक्ष्य है। ऐई! पंचास्तिकाय! वह पर से भिन्न वस्तु की स्थिति बतानी है। यहाँ तो अब विकार से भिन्न बताना है। क्षणिक कृत्रिम विकृत और त्रिकाली अविकृत स्वरूप, दो के बीच के विभाजन



की बात है। पंचास्तिकाय में यहाँ तक आता है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, तो राग-द्वेष का उत्पाद वह लक्षण है और आत्मा द्रव्य लक्ष्य है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य लक्षण है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य लक्षण है तथा द्रव्य है, वह लक्ष्य है। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् है और सत् है, वह द्रव्य है। दो सूत्र है न! एक घण्टे में कितना याद रहे? ऐसी बहुत बातें हैं। आहाहा!

**इस प्रकार..** आत्मा का और विकारी का। आहाहा! स्वभाव जहाँ शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. ऐसा जहाँ शुद्ध का भान हुआ, उस शुद्ध की परिणति में राग का और राग की परिणति में आत्मा का.. आहाहा! **भेदविज्ञान भलीभाँति सिद्ध हुआ। ठीक! आहाहा!** इस प्रकार आत्मा का और विकार का—भाव क्रोध का; द्रव्य क्रोध तो जड़ है, तथा कर्म-नोकर्म का.. आहाहा! **भेदविज्ञान भलीभाँति सिद्ध हुआ। विशेष आयेगा...**

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)